|| ओ३म् ||

आर्य समाज और श्री राम

प्रणेताः

आचार्य स्व. प्रेमभिक्षु

एम. ए. सि. शास्त्री

सम्पादक

आचार्य स्वदेश

प्रकाशक :-

सत्य प्रकाशन

वेद मन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा-३

छठवीं बार ३००० सन् २००० मू० ३/-

ओ३म्

आर्यसमाज और श्रीराम

रामायणकाल

बाल्मीकि रामायण में **श्रीराम** का ऐतिहासिक चरित्र वर्णित है। उसके पढ़ने से स्पष्ट है कि **श्रीराम** आर्य थे, वैदिक धर्मी थे और **श्रीराम** के समय में वैदिकयुग वर्तमान था। तब एक ही धर्म था, हमारा और संसार का– वैदिक धर्म, एक ही धर्म ग्रन्थ था, तब हमारा वेद। **श्रीराम** के समय में हमारा जातीय नाम आर्य था। आर्य और दस्यु सिर्फ ये दो ही विभाग थे, उस समय मनुष्य जाति के आर्य ही देव कहलाते थे और दस्युओं का ही दूसरा नाम 'असुर' था। **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के वैदिक आदेश या लक्ष्य की पूर्ति के लिए **'राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः'** का घोष करने वाले वैदिक ब्राह्मण एवं ऋषि मुनि वैदिक शिक्षाओं के प्रचार द्वारा असुरों की आसुरी वृत्ति छुड़ाकर उन्हें देव बनाने या दस्युओं को आर्य बनाने का यत्न किया करते थे। जो दस्यु या असुर ब्राह्मणों की सद्शिक्षाओं से दुराचरण को नहीं त्यागते थे। और अपने दुराचरण एवं दुष्ट स्वभाव से आर्यजनों (देवों) को कष्टित करते थे उनके लिए क्षत्रिय (आर्यराजा) का 'दण्ड' होता था। उस समय मेरा राम **गोस्वामी जी** के शब्दों में व्रत लेता था– "**निशिचरहीन करों महि भुज उठाइ पन कीन्ह**" महर्षि बाल्मीकि के शब्दों में मेरा प्यारा राम उद्घोष करता था– "**क्षत्रियै धीर्यते चापं नार्त शब्दों भवेदिति**" अब क्षत्रिय ने धनुष धारण कर लिया है, अब किसी दुःखी की करूण पुकार सुनाई नहीं दे सकती।

इस प्रकार ब्राह्मण ऋषि वेद प्रचार द्वारा,क्षत्रिय शासक

धर्म–दण्ड द्वारा विश्व आर्य बनाने के पवित्र लक्ष्य की पूर्ति करते थे। इस पवित्र उद्देश्य से आर्य राजा अश्वमेध यज्ञ का आयोजन कर चक्रवर्ती राज्य संस्थापित करते थे और ऋषिगण वैदिक सांस्कृतिक दिग्विजय यात्रायें करते थे। मानो दोनों मिलकर–

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचः चरतौ सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना।।

–वेद की इस पवित्र ऋचा के अनुसार आचरण कर विश्व–शान्ति में सहभागी बनते थे। यह वह समय था जब ऋषिगण राजा को सजग रहने के लिए कहते थे– "राजन, हम तुम्हारा राज्यान्न ग्रहण नहीं करते, पता नहीं वह किस प्रकार का है?" और उत्तर में मेरा अश्वपति (राष्ट्रपति) उद्घोष पूर्वक सविनय निवेदन करता था– "महाराज! मेरे राज्य का अन्न आप अवश्य ग्रहण कर कृतार्थ करें क्योंकि–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः।
नाना हिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरीणि कुतः।।

–प्रभो! मेरे सम्पूर्ण जनपद में एक भी चोर नहीं है, क्योंकि एक भी व्यक्ति कंजूस या अनुदार नहीं है, एक भी मद्यपी (नशीली वस्तुओं, बीड़ी, सिगरेट, भांग, गाँजा, सुल्फा, अफीम और शराब आदि का सेवन करने वाला) नहीं है, एक भी परिवार या व्यक्ति ऐसा नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो एक भी अविद्वान् (मूर्ख) नहीं। एक भी व्यभिचारी नहीं। तो फिर व्यभिचारिणी क्यों कर हो सकती है? अहा! कैसा स्वर्णिम युग था वह!!"

यह वह युग था, जब महर्षि मनु के शब्दों में–

एतद्देशे प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

—संसार भर के मनुष्य इस आर्यावर्त्त देश के अग्रजन्मा ब्राह्मणों के चरणों में अपने—अपने चरित्र का शिक्षण प्राप्त करने आते थे। **सन्त तुलसीदास** के शब्दों में भी **'रामराज्य'** की झाँकी देखें—

वर्णाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहि सुखहि, नहिं मद शोक न रोग।।

प्रकट है कि यह वह युग था जब हम चक्रवर्ती सम्राट भी थे और जगद्गुरू भी! **''सोने की चिड़िया''** कहा जाता था मेरा भारत, तब और हमारी इस गौरव—गरिमा का रहस्य था—हम एकमेव वेद के उपासक थे। हम वैदिक धर्मी थे, **आर्य** थे। हमारे देश का नाम था आर्यावर्त्त वैदिक संस्कृति, वैदिक संस्कार, वैदिक आचार व्यवहार, वैदिक भक्ति और वैदिक वर्णाश्रम का सनिष्ठ पालन तब महान आर्यावर्त का प्रत्येक नागरिक स्त्री पुरूष करता था। ऐसा था वह रामायण काल, ऐसा था वह राम राज्य!

तो **महाभारत** की लड़ाई से पहले भारत और सारे संसार में एक ही धर्म था— वैदिक धर्म, एक गुरूमन्त्र था गायत्री। एक ही अभिवादन था **नमस्ते**। एक ही जातीय नाम था **आर्य।** हम ऐसे ही निराकार ईश्वर के उपासक थे जिसका मुख्य और निज नाम **ओ३म्** है। **श्रीराम** और **श्रीकृष्ण** तथा **गौतम कपिल 'कणाद, पतंजलि, व्यास, जैमिनि** आदि **ऋषि मुनि** उसी एक निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर के उपासक थे। **बौद्ध** काल से पहले कहीं **मूर्तिपूजा** का नाम भी नहीं था। न अनेक मत—मतान्तर थे।

महाभारत के बाद-

बीच के जमाने में जिसे अन्धकार–युग या वाम मार्ग काल कहना उचित होगा, हम इन सब सच्चाइयों को भूल गये, सनातन धर्म लुप्त हो गया। हमारे पवित्र धर्म ग्रन्थों और **रामायण**, **महाभारत** आदि इतिहास ग्रन्थों में भी पापियों ने–ऋषि लोग गौ–मांस खाते थे, देव पर स्त्री गामी थे, **श्रीकृष्णादि** महापुरूष चोर और व्यभिचारी थे आदि मिलावटें कर दीं। बिल्कुल नई मनघड़न्त पुस्तकों का नाम **पुराण** रख दिया। प्रसिद्ध कर दिया कि **शिवजी** भंग पीते थे, **देवी शराब** पीती और भैंसा, बकरा खाती थी। देव–देवियों की ओट में खुद तरह–तरह के पाप करने लगे। पापों के फल से छूटने और मुक्ति पाने के सस्ते से सस्ते नुस्खे निकाल दिये। छूताछूत के नाम पर अपने ही भाइयों को धक्के दे–देकर **मुसलमान** और **ईसाई** बना दिया। लाखों नहीं करोड़ों दूध मुँही बच्चियों को **'विधवा'** करार देकर विधर्मियों के हवाले कर दिया। फलतः पाकिस्तान बना। जन्मगत जात–पाँति के नाम पर अनेक तरह के भेद भाव पैदा हुए। हम अपना नाम और स्वरूप तक भूल गये। अनेकों ईश्वरों की कल्पना की गई और ईश्वर पूजा का स्थान जड़ मूर्ति की पूजा ने ले लिया। महापुरूषों को ईश्वर बनाकर सर्वनाश का मार्ग खोल लिया गया। यह है संक्षेप में कहानी कि महान् भारत कैसे इतना गरीब और गुलाम बना? सब देशों का सिरताज कैसे सबका मुहताज बना?

देव दयानन्द की दया!

युगों–युगों के बाद ईश्वर की असीम दया से महर्षि दयानन्द का जन्म इसी पुण्य–पावनी भारत–भूमि में हुआ। उन्होंने १८ घण्टे के समाधि सुख को छोड़कर, अपने मोक्षानन्द

को निछावर करके हमें हमारे भूले हुए आत्म–गौरव और भूल हुए वेदपथ को स्मरण कराया।

स्वामी जी ने वेद ज्ञान से प्राप्त दिव्य दृष्टि से यह सब देखा और बड़े दुखी हृदय से उन्होंने इस सारे पाप–ताप को ललकारा। उन्होंने फिर से वेदों की राह पर लौटने की आवाज दी, जिस पर चलकर भारत फिर से जगद्गुरू बन सके और एक वैदिक ईश्वर की उपासना द्वारा सारा संसार स्वर्गधाम बन जाये। ऋषि ने हमें भूली वैदिक राह फिर से बताई और कहा–

आर्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म।
ओ३म् हमारा देव है, सत्य हमारा कर्म।।

ऋषि दयानन्द चाहते थे कि बीच के जमाने की विकृतियों– मत–पन्थों को छोड़ फिर सारा संसार **श्रीराम** के जमाने की तरह वेद की राह पर आये। फिर एक बार संसार के सभी श्रेष्ठ सदाचारी (आर्य) मनुष्य **श्रीराम** की भाँति एक ही ईश्वर के उपासक हों। ऋषि की आँखें वह दिन देखना चाहती थीं, जब फिर यहाँ **राम-भरत** से भाई, **सीता** सी देवियाँ, **कौशल्या** और **सुमित्रा** सी मातायें, **दशरथ** जैसे पिता, **राम** जैसा पुत्र, मुनिवर **वशिष्ठ** से कुलगुरू, **महामुनि विश्वामित्र** और **महर्षि अगस्त** जैसे शिक्षक, **सुग्रीव** जैसे मित्र और **हनुमान** जैसे सेवक हों, जिससे हमारा भारत फिर महान् बन जगद्गुरू और विश्व सम्राट का गौरव प्राप्त कर सके। सारा संसार जिसकी शीतल छाँव में सुख–शान्ति का अनुभव कर लौकिक और पारलौकिक उन्नति के समन्वय रूप धर्म का पालन कर फिर वैदिक धर्म माँ मानवता का जय–जय गान कर सके।

यह स्वप्न कैसे साकार हो, इसके लिए उस युगद्रष्टा

ऋषि ने इस महान् आर्य जाति आर्यावर्त्त के शिखर से गिरकर रसातल में पहुँचने जैसे घोर पतन के मूल कारणों पर गहराई से चिन्तन किया। और तब कवि के शब्दों में उनसे यह सच्चाई छिपी नहीं रही कि– **"सब दुखों का मूल है ईश्वर जुदाई आपकी"** एक वैदिक ईश्वर की जगह अनेक कल्पित देवी–देवताओं की पूजा, गुरूडम और विविध मत–पन्थों का पाखण्ड ही हमारी दीनता, दरिद्रता और पराधीनता का मूल–कारण है इसे ऋषि ने देखा। उन्होंने पहिचाना कि महापतन का असली कारण है– मेरे महान् पूर्वज **राम-कृष्ण** को ईश्वर अथवा उपन्यास कल्पित पात्र बनाकर मुझसे छीन लिया गया है। और इस प्रकार मेरी प्रेरणा का स्रोत सुखा डाला गया है। बहुदेवतावाद, अवतारवाद, चमत्कारवाद और अलंकारवाद की छाया में हमने अपने **राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, महावीर हनुमान्** और माता **सीता** के चरित्र की जगह चित्र– पूजा का पाखण्ड अपना कर अपने सर्वनाश को स्वयं आमन्त्रित किया है। इसी पाखण्ड के खण्डन के लिये ही ऋषि ने जाति–उद्धार, देशोद्धार और विश्वकल्याण की पवित्र भावना से बड़े दर्द भरे दिल से 'पाखण्ड–खण्डिनी पताका' को उठाया। उस महान् सन्त ने इस कठोर कर्त्तव्य को बड़ी पीड़ा और करूणामयता से निभाया है।

पतित पावन-पावन दयानन्द।

श्रीराम पतित पावन थे। उन्होंने निषाद को गले लगाया था शबरी का आतिथ्य स्वीकारा था, हताश **सुग्रीव** को नवजीवन दिया था। ठुकराये हुए विभीषण को हृदय से लंका का राज्य दिया था। सचमुच मेरे **राम** पतित–पावन थे। पर मुझे कहने दीजिये कि ऋषि देव दयानन्द पतित–पावन–पावन थे। उन्होंने

अवतारवाद और चमत्कारवाद की ढेरों मिट्टी और शिलाखण्डों के नीचे दबे मेरे महान् पूर्वज पतित–पावन **राम** को भी इन शिलाखण्डों से निकालकर उन्हें फिर उनके शुद्ध ऐतिहासिक स्वरूप में महा–मानव, राष्ट्र पुरूष एवं युग निर्माता के रूप में प्रस्तुत किया। यह सत्य कोटि–२ मानव–प्रजा को अभी जानना शेष है इस विश्वहित के कार्य में अपमान सहकर, गालियाँ खाकर भी और विषपान करके वे हमें अमृत दान कर गये।

महान् आर्यसमाज-

आर्यसमाज ही ऋषिप्रदत्त वह अमृत है। आर्यसमाज परोपकार का महा कल्पवृक्ष हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने-

''मुद मंगलमय सन्त-समाजू,
जनु जड़ जंगम तीरथ राजू''

में जिसे 'सन्त समाज' की वन्दना की है, वह आर्यसमाज पर सम्पूर्ण घटित होता है। सचमुच महान् आर्यसमाज तीर्थराज है।'

आर्यसमाज वेद प्रचार और वेदाचार द्वारा ऋषि के स्वप्नों को पूरा करना चाहता है। वह फिर वैदिक युग और रामायण युग को वर्तमान करना चाहता है। यह भी सम्भव है जब हम **श्रीराम-कृष्ण** आदि को ईश्वर न मानकर अपने महान् पूर्वज राष्ट्रपुरूष और महापुरूष के सत्य रूप में मान और उनके चित्रों की नहीं चरित्र पूजा का व्रत लें। चित्र का नहीं चरित्र की पूजा यही आज का युग–घोष हो।

एक भ्रान्ति और उसका निराकरण

हमारे भाई–बहिनों में आर्यसमाज के स्वरूप और कार्य के सम्बन्ध में जहाँ अनेकों भ्रान्तियां है, वहाँ एक आम धारणा यह है कि आर्यसमाज **राम** और **कृष्ण** को नहीं मानता। यह

भ्रान्ति कुछ तो इस कारण है कि अपने को **आर्यसमाजी** कहने वालों में से भी अनेकों ने आर्यसमाज को उसके सही रूप में समझा ही नहीं। हर बात का आँख मींचकर खण्डन करना ही उनकी दृष्टि में आर्यसमाज है।कुछ इस भ्रान्ति का कारण हमारे वे प्रचारक और व्याख्याता हैं जो स्वयं आचरण हीन होने पर भी दूसरों को गाली देना ही आर्यसमाज का प्रचार समझे हुए हैं। और इस भ्रान्ति का बड़ा कारण, क्षमा करें, हमारे वे पौराणिक पण्डित हैं जो आर्यसमाज के पक्ष को हृदय में सही मानते हुए भी, इस मिथ्या भय से कि उनकी रोटी का क्या बनेगा, अपनी आत्मा के विरूद्ध और कभी–कभी दुराग्रह और अज्ञानवश भी ऐसी भ्रान्तियां जन–समाज में फैलाते रहते हैं। आयें, हम इस भ्रान्तिजाल से बचने के लिए इस पर थोड़ा विचार करें।

(१) इस सम्बन्ध में पहली जानने योग्य बात यह है कि आर्यसमाज कोई नया पन्थ या मत नहीं है। आर्यसमाज **'दयानन्द पंथ'** नहीं आर्यसमाज के दस नियमों में आपको कहीं भी 'दयानन्द शब्द नहीं मिलेगा। आर्यसमाज का धर्म वैदिक धर्म है। अभिवादन **'नमस्ते'** है। गुरूमन्त्र 'गायत्री' है। इसमें कहीं भी दयानन्द का नाम नहीं है।

(२) ऋषि दयानन्द ने केवल हमें भूली हुई वैदिक सच्चाइयों को फिर से याद कराया। हमारा नाम, इष्टदेव, गुरूमन्त्र, अभिवादन और धर्म ग्रन्थ हम सब भूल चुके थे। हम भूल चुके थे कि हम सब भी संसार के चक्रवर्ती सम्राट रहे थे और हम **राम-कृष्ण** जैसे महान् पूर्वजों की सन्तान हैं। ऋषि दयानन्द ने इन भूले हुए तत्वों को याद कराया। ऋषिवर दयानन्द ने उलटे हुए को सीधा किया। ऊपरी निगाह से

देखने वालों ने समझा कि वह हमारी मान्यताओं और आदर्शों को उलट रहा है। पर गहराई से देखने वालों ने देखा और समझा कि उस प्यारे ऋषि ने आत्म बलिदान के मूल्य पर भी उलटे को उलट कर संसार को फिर सीधा और सही, सत्य सनातन राजमार्ग (वेद–पथ) बताया था, जिसे हम मत–मतान्तरों की पगदण्डियों में भूल बैठे थे। कोई नई बात, कोई नई राह उन्होंने नहीं बताई। वैदिक धर्म ही सनातन धर्म है, इस पर जो धूल कीचड़ या काई जम गई थी, उसे ऋषि ने साफ किया।

(३) सच्चा धर्म बुद्धि और विज्ञान का विरोध नहीं हो सकता। धर्म में विज्ञान और सृष्टि क्रम (ईश्वरीय नियम) के विरूद्ध चमत्कारों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। विज्ञान ईश्वरभक्ति का स्रोत है। धर्म में आत्म–निर्माण और युग–निर्माण का समन्वय है। सच्चा धर्म सच्चरित्रता का आधार है। इन्हीं तत्वों के आधार पर आर्यसमाज **श्रीराम** को युग पुरूष, राष्ट्र नायक और महापुरूष मानता है, ईश्वर नहीं। धर्म का ऐसा रूप, ऐसी मान्यतायें जो मानव चरित्र को गिराती हैं, आर्य समाज केवल उन्हीं का खण्डन करता है।

स्पष्ट है कि आर्यसमाज **श्रीराम** को मानता है और सर्वाधिक मानता है। हाँ, पौराणिक भाइयों के मानने के तरीकों में और आर्यसमाज के मानने के तरीकों में अन्तर है। यहाँ एक दृष्टान्त से इस अन्तर पर थोड़ा और विचार कीजिए।

(दो तस्वीर हैं हमारे सामने, अपने प्यारे **राम** की। एक तस्वीर में **राम** के पैरों में झुँझुनूँ बँधे हैं, वह नाच रहा है। उसके नीचे एक पंक्ति लिखी है– **'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियां'** दूसरी तस्वीर में **राम** क्षत्री तेज से दीप्तिमान् है,धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाय **'निशिचर हीन करौं महि'** की व्रत

पूर्ति के लिए सन्नद्ध। इस तस्वीर पर भी एक पंक्ति लिखी है– **'धमक चलत रामचन्द्र हालत सब दुनियाँ''**। पहली तस्वीर पौराणिक भाइयों के राम की है और दूसरी आर्यसमाज के **राम** की। दोनों के अन्तर पर गहराई से सोचिए और तब सोचिये कि क्या हम अपने शक्ति–स्त्रोत **राम** को अब भी केवल मनोरंजन और मन-बहलाव का साधन या फिर पापों से नहीं, पापों के फल से छुट्टी पाने का साधन बनाये रखेगें? बन्धु! आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक देव **दयानन्द** के उपकार को समझिये और उनके कृतज्ञ हूजिए। **'कृतघ्नस्यनास्ति निष्कृतिः'**।

एक प्रश्न और उसका समाधान

प्रश्न- यह ठीक है कि **राम** एक आदर्श पुरूष एवं महामानव थे। पर यदि उन्हें ईश्वरावतार ही मान लिया जाये तो इसमें क्या हानि है, कम से कम **श्रीराम** का तो इसमें गौरव बढ़ता ही है?

उत्तर-राम-कृष्ण आदि अपने महापुरूषों को ईश्वर बताने या मानने में एक नहीं अनेकों हानियां और ऐसी भयंकर हानियां हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। रही **राम-कृष्णादि** को ईश्वर बनाने में उनकी गौरव–वृद्धि की बात सो यह भी एक विचित्र भ्रान्ति मात्र है।

याद रखिये, महात्मा बुद्ध का गौरव उन्हीं के अनुयायियों द्वारा उस दिन खत्म करने की कोशिश की गई जिस दिन बुद्ध को ईश्वर की जगह पर बिठलाकर उनकी मूर्ति की पूजा आरम्भ की गई और इस तरह जब बुद्ध के चरित्र की पूजा की जगह उनके चित्र की पूजा शुरू हुई। ठीक इसी तरह **श्रीराम** और **श्रीकृष्ण** का गौरव उस दिन मिटाने का प्रयत्न किया गया जिस दिन बौद्धों की नकल करते हुए उन्हें ईश्वरत्व की चादर ओढ़ा दी गई। यद्यपि सत्य सिद्धान्तों की अवमानना स्वयं में सबसे बड़ी हानि है। पर हम इस प्रकरण में अवतारवाद की दार्शनिक और सैद्धान्तिक कमजोरियों की चर्चा नहीं करेंगे। यहाँ तो हमें यह देखना है कि किस प्रकार मर्यादा पुरूषोत्तम **श्रीराम** को ईश्वर बनाकर जहाँ हमने उनकी महानता और गौरव को मिटाने का अपराध किया वहाँ अपने सामाजिक और चारित्रिक पतन का रास्ता भी तैयार कर लिया, जिसके पंरिणाम में महान् भारत की सर्वाधिक दुर्गति रूप दुष्फल हमें

भोगना पड़ा।

महापुरूषों के गौरव की समाप्ति

जब हम यह कहते हैं कि **श्रीराम** को ईश्वर बनाकर हमने उनके गौरव को मिटाया है तो पहली बार सुनने में यह बात आपको अजीब सी लगेगी। पर यह है सही। आप जरा विचारिये कि **श्रीराम** का महत्व, उनका महान् गौरव उनके महान् चरित्र और आदर्श जीवन में निहित है। पर क्या उन्हें ईश्वर बनाकर भी उनका यह स्वाभिमान युक्त गौरव शेष रहेगा?

राज्याभिषेक की पहली रात्रि। **राम** सोने लगे हैं। विचार आता है कि अन्य भाइयों को छोड़कर मुझे ही अयोध्या का यह चक्रवर्ती राज्य क्यों दिया जा रहा है? क्या यह उचित है? और इसी विचार को करते–करते वे सो जाते हैं। उन्हें ज्ञात है कि प्रातः होते–होते उन्हें अयोध्या का विशाल साम्राज्य मिलना है। पर जागते में रात्रि में ही नक्शा बदल जाता है और उसके अनुसार **श्रीराम** को दूसरे दिन जागने पर आदेश मिलता है– **'तापस वेश विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी।'** पर वाह रे आर्योत्तम **राम**! धर्म–धुरीण **राम**!! मर्यादा पुरूषोत्तम **राम**!!! न उसे राज्य मिलने के विचार से कोई खुशी थी और न अब जंगलों की भयानक राह के राही बनने के समाचार से कोई विषाद है। महामानव **राम** के जीवन का यह कैसा गौरवशाली चित्र है, इसमें कितनी चमक है! पर जब इसी चित्र पर अवतारवाद की तूलिका फेर दीजिए आप देखेंगे न सिर्फ चित्र की चमक ही खत्म हुई है, **श्रीराम** का चेहरा ही गायब हो गया है, उनका अस्तित्व ही मिट गया है। आप हैरान मत होइये। बात बिल्कुल साफ है। **राम** यदि ईश्वर हैं तो उनको

राजगद्दी से खुशी नहीं हुई और जंगल जाने से दुःख नहीं हुआ तो इसमें गौरव की कौनसी बात है? भाई, ईश्वर **राम** के लिए तो जैसा घर वैसा ही बाहर। जैसा ही राजमहल वैसा ही बनवास। इसमें विशेषता की क्या बात है? देखा आपने **श्रीराम** को ईश्वर बताते ही उनके चरित्र की सारी विशेषताएँ समाप्त हो जाती हैं।

अब आप **श्रीराम**—जीवन के महत्वपूर्ण चित्रों को एक—एक करके सामने लाइये। आप देखेंगे जब तक **श्रीराम** आर्य जाति के महान् रत्न, एक सर्वोपरि आदर्श महापुरूष के रूप में हैं (जो कि उनका वास्तविक रूप है) इन चित्रों में कितनी चमक है, **श्रीराम** का मुख मण्डल आर्योचित तेज से कैसा दीप्तिमान है। पर जहाँ आपने उन्हें ईश्वर बनाया नहीं कि—भरत के आग्रह पर भी अयोध्या का राज्य स्वीकार न करने वाले **श्रीराम** के अनुपम त्याग, **शबरी** के आश्रम को पवित्र करने वाले पतित—पावन **राम, विभीषण** के आते ही उसे **'लंकेश'** कहकर पुकारने वाले शरणागत—वत्सल **राम** और यदि **रावण** शरण में आ जाये तो उसे अयोध्या का राज्य देने की भावना रखने वाले महान् अपरिग्रही **राम** तथा जंगल में नितान्त साधनहीन होने पर अयोध्या से भरत की कोई सहायता न लेकर वानरराष्ट्र और राक्षसराष्ट्र की सन्धि को खत्म कराके वानरराष्ट्र को अपनी ओर मिलाकर राक्षरसराष्ट्र को धराशायी करने वाले राजनीति विशारद राष्ट्रपुरूष राम के महान् जीवन के ये सारे गौरवयुक्त चित्र कितने बेजान और अर्थशून्य हो जाते हैं। आखिर ईश्वर **राम** ने यह सब कुछ किया तो इसमें क्या बात हुई? हाथी ने चींटी को कुचल दिया यह कोई बखान करने वाली बात है? इसके बखान से तो हाथी का अपयश ही होगा,

उसकी गरिमा निश्चित ही घटेगी।

राम का रामत्व **राम** की वे विशेषताऐं हैं जिनके कारण **राम राम** हैं। वे तभी तक रहती हैं जब तक वे एक महापुरूष, राष्ट्रपुरूष, जननायक लोकनायक या युगपुरूष हैं। ईश्वर कहते ही उनकी सारी महत्ता का यह महल धड़ाम से गिर पड़ता है। और उसके नीचे ऐतिहासिक सत्य, सामाजिक चेतना, अतीत का गौरव और युग निर्माण के सभी समुज्जवल चित्र भी दबकर नष्ट हो जाते हैं।

ऐतिहासिक सत्य का लोप

प्रश्न- अवतारवाद की मान्यता से ऐतिहासिक सत्य का लोप कैसे हो जाता है?

उत्तर- महापुरूषों को अवतार सिद्ध करने के लिए 'चमत्कारवाद' का आश्रय लिया जाता है। उनके जीवन की सहज सरल घटनाओं को ऐसा रंग दिया जाता है जिससे वे अमानवीय प्रतीत हों। **सीता** की माता का नाम **'धरणी'** था इसी को एक रंग दे दिया गया और **सीता** के जन्म की एक कथा घड़ ली गई। कहा गया कि **सीता** का जन्म धरणी (स्त्री) से नहीं (पृथ्वी) से हुआ और **सीता** की इह लीला की समाप्ति के लिए भी पृथ्वी के फट जाने की कहानी तैयार की गई। **अहिल्या** को शिला (पत्थर) बना दिया गया, **हनुमान्** और **सुग्रीव** को पूंछ वाला बन्दर और **रावणादि** राक्षसों को अति बीभत्स बना दिया गया। **राम**—जन्म की घटना के पीछे कई 'अनौखी बुद्धि' शून्य और परस्पर विरोधी कथायें घड़ ली गईं। **राम, केवट** जैसे हास्यास्पद प्रसंग तैयार किये गये।

सागर (जल—समूह) को हाथ जोड़कर खड़ा किया गया, **हनुमान्** इस धरती से तेरह लाख गुने सूरज को गाल में

दे गये, **रामका** एक साथ ही हजारों लोगों से मिल लेना(आदि अनेकों चमत्कारों की रचना अवतार--सिद्धि के लिए ही की गई। इसका भंयकर परिणाम यह हुआ कि **राम** का यशस्वी जीवन इतिहास से मिट रहा है। हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। यहाँ भी हुई। आज हम सुन रहे हैं कि **राम** और उनका पावन वृत्त ऐतिहासिक सच्चाई नहीं, कवि कल्पना की उपज है। यह इन चमत्कारों का नतीजा है। किसी ऐतिहासिक पात्र का जमीन से पैदा होना, पैर छूते ही पत्थर का स्त्री बन जाना, इसी धरती के एक प्राणी द्वारा धरती से लाखों गुने बड़े सूरज को गाल में दे दिया गया– यह सब कैसे सम्भव है? इन अति वृत्तों को **रामायण** में जोड़ने से पाश्चात्य विद्वानों और उन्हीं की विद्वत्ता के कायल भारतीय महापुरूषों की दृष्टि में रामायण जैसा महनीय ऐतिहासिक ग्रन्थ कल्पना-प्रधान काव्य–ग्रन्थ मात्र रह गया है। क्या यह हमारे गौरवमय अतीत के साथ एक घोर दुर्भाग्यपूर्ण खिलवाड़ नहीं है? ऐतिहासिक सत्य की यह निर्मम हत्या सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अभिशाप है, जिसका मूल है 'अवतारवाद' की मिथ्या और विनाशकारी कल्पना।

जातीय गौरव का ह्रास-

प्रश्न- रामायण एक इतिहास ग्रन्थ नहीं है, ऐसा मानने में और विशेष हानि क्या है?

उत्तर-आप शायद इससे उत्पन्न समस्या की गहराई तक नहीं पहुँचे। **राम** को अनैतिहासिक मानकर **'राम हमारे पूर्वज हैं'** यह गौरवमयी स्थिति समाप्त हो जाती है। हम बड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि हमारी वैदिक संस्कृति ने **राम** जैसे महापुरूष, **सीता** जैसी देवियाँ, **लक्ष्मण** और **भरत** जैसे

आदर्श भाई, **कौशल्या** जैसी मातायें, **हनुमान्** जैसे आदर्श सेवक संसार को दिये। पर क्या अवतारवाद के पाप के प्रतिफल से अनैतिहासिक मान लिये जाने पर हमारा यह सांस्कृतिक और जातीय गौरव शेष रह सकेगा?

यों महापुरूष किसी भी देश विशेष की सम्पत्ति नहीं होते उनका जीवन सार्वजनिक होता है फिर भी वे किन्हीं विशिष्ट सांस्कृतिक आदर्शों और विशिष्ट जातीय गौरव के प्रतीक होते हैं। पर ईश्वर के लिए यह बात नहीं है। यदि **राम** ईश्वर हैं तो 'वे भारतीय संस्कृति की महान् देन हैं' ऐसा कहने, सोचने समझने और उससे गौरवान्वित होने का अवकाश ही कहाँ रह जाता है?

प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है-

इसी प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि आखिर किसी महापुरूष का लाभ उसके देशवासियों तथा सर्व साधारण के लिए क्या हैं? महापुरूषों की जयन्तियाँ हम क्यों मनाते हैं? इसलिए न कि आगे आने वाली पीढ़ियाँ उन महापुरूषों के पद–चिन्हों पर चलकर उन्नत हो सकें।

अग्रेजी के प्रसिद्ध 'लॉंगफैलो' की प्रसिद्ध कविता 'सम आफ लाइफ' की निम्न पंक्तियाँ मननीय हैं–

Lives of great man all remind us.
We can make our lives sublime.
And departing leave behind us.
Foot-prints on the sands of time.

अर्थात् महापुरूषों के पवित्र चरित्र हमें अपने जीवनों को पवित्र और चरित्र को समुन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं कि हम भी संसार से विदा होते समय पीछे आने वालों के लिये

समय की बालू पर (मार्ग दर्शक) पद–चिन्ह छोड़ सकें।

राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, गांधी जयन्ती, दयानन्द बोधोत्सव आदि पर्व इसलिए मनाते हैं कि युगों–२ के बाद भी हमारा राष्ट्र इन पवित्र चरित्रों से प्रेरणा ले सके। महापुरूषों का किसी देश या जाति के लिए यही महत्व है। **श्रीकृष्ण** जी महाराज की **'यद्यदाचरितः श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः'** की उक्ति इसी विचार से तो है। पर अपने इन महापुरूषों को ईश्वर बनाकर हम इस लाभ से वंचित हो जाते हैं, हमारी प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है।

जिस राष्ट्र के जितने ऊँचे आदर्श चरित होते हैं वह देश चरित्र और आचार–विचार की दृष्टि से उतना ही ऊँचा उठ जाता है। हमारे देश के पास जब तक **श्रीराम** जैसे महान् चरित्र रहे भारत संसार का गुरू बना रहा। पर जब हमने आदर्शों को ईश्वर बना डाला तो हमें प्रकाश और प्रेरणा की ऊष्मा मिलना बन्द हो गयी। अँधेरे के घटाटोप में हम ठोकरें खाने लगे और पतन की राह पर चल पड़े। हमने अपने महापुरूषों को ईश्वर बनाकर उनके साथ जो अन्याय किया है और अपने राष्ट्रीय आदर्शों को खोकर आप ही अपने पैरों पर जिस प्रकार कुल्हाड़ी मार ली है इस तथ्य को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के आद्य सर संघ चालक **डा० हैडगेवार जी** ने एक प्रश्नोत्तर क्रम में बड़े खेद के साथ व्यक्त किया है। उस संदर्भ का कुछ अंश हम यहाँ ज्यों का त्यों दे रहे हैं–

''हमारा आदर्श क्या हो? इस संदर्भ में डा० साहिब कहते हैं–

''मेरी सदा की प्रथा के अनुसार मैं यहाँ भी एक छोटा–सा उदाहरण बतादूँ। एक समय हमारे यहाँ एक परिचित

मेहमान पधारे। वे प्रतिदिन नियम पूर्वक सन्ध्या–स्नान करने के उपरान्त अध्यात्म रामायण का एक अध्याय पढ़ा करते थे। एक दिन की बात है कि मैंने भोजन करते समय उनसे पूछ ही तो लिया, "आपने जो अध्याय पढ़ा, उसका अनुशीलन तो आप करेंगे ही।" इतना ही सुनना था कि वे बौखला उठे और क्रोध से संतप्त होकर बोले "आप **रामचन्द्र जी** और भगवान का उपहास करते हैं। हम लोग गुण–ग्रहण करने की दृष्टि से नहीं अपितु पुण्य–संचय और मोक्ष प्राप्ति के लिए ग्रन्थ पाठ करते हैं।"

"हिन्दू जाति की अवनति के जो अनेकानेक कारण हैं उनमें से उपर्युक्त भावना भी एक प्रधान कारण है। वास्तव में हमारे धर्म–साहित्य में एक से एक बढ़कर एक ग्रन्थ हैं। हमारा गत इतिहास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण वीररस प्रधान तथा स्फूर्ति–दायक है। परन्तु हमने कभी उस पर योग्य रीति से विचार करना सीखा ही नहीं। जहा कहीं कभी कोई कर्तृत्वशाली या विचारवान् व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में ढकेल देते हैं, उस पर "देवत्व" लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते।" इस कारण यह भ्रम मूलक धारणा रखते हुए कि देवताओं के गुणों का अनुशीलन मनुष्य की शक्तिसे परे है हम उनके गुणों को भी आचरण में नहीं लाते। यहाँ तक कि अब तो **श्री शिवाजी** और **श्रीलोकमान्य तिलक जी** की गणना भी अवतारों में की जाने लगी है। **शिवाजी** महाराज को तो शंकर का अवतार समझनें भी लगे हैं। और शिवा चरित्र (शिवाजी के चरित्र) में इसी के समर्थन में एक उल्लेख भी पाया जाता है। वास्तव में **लोकमान्य जी** तो हम लोगों के समय में हुए हैं परन्तु मैंने एक बार ऐसा चित्र देखा जिसमें

उन्हें चतुर्भुज बनाकर उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म दे दिये गये थे। निस्सन्देह इस तरह अपनी महान् विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में ढकेल देने की सूझ की बलिहारी है। महान् विभूति के देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में। वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है, किन्तु उसके गुणों के अनुकरण करने का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पास आने वाली जिम्मेदारी जानबूझ कर टाल देने की यह अनौखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपना ली है।

अतएव आप किसी व्यक्ति को ही आदर्श मानना चाहें तो **शिवाजी** को ही अपना आदर्श रक्खें। अभी तक वे पूर्णतया भगवान् के अवतारों की श्रेणी नें नहीं ढकेले गये हैं। इसलिए भगवान् बना दिये जाने के पूर्व ही उन्हें आदर्श व्यक्ति मानकर अपने सामने रखिये।"

{'परम पूजनीय डा० हैडगेवार, छटवीं आवृति पृ० ६६-७१}

अवतारवाद का एक आत्महीनता का पाप और घोर दुष्परिणाम यह है कि इस आत्महीनता की वृत्ति का उदय होता है। इस आत्महीनता आत्महत्या है। आत्म—विश्वास ही जीवन की सफलता का मूलमन्त्र है। "अवतारवाद" इसे हमसे छीन लेता है।

प्रश्न- सो कैसे?

उत्तर- अपने महापुरूषों को ईश्वर बनाकर हम हर ऊँचे आदर्श के बारे में सोच बैठते हैं, कि वे ईश्वर थे, ऐसा, काम वही कर सकते थे। ऐसी आदर्श मातृ—पितृ—भक्ति ऐसा अनूठा भ्रातृ—प्रेम, ऐसा अछूता पत्नी—व्रत ऐसी अपूर्व देश—सेवा और त्याग भावना उन्हीं के द्वारा सम्भव है, हमारे बस की यह बात

कहाँ है? इस प्रकार हम आत्महीनता के शिकार होकर कभी ऊँचा उठने का विचार तक नहीं कर पाते।)

स्वाभिमानशून्य मृत जीवनः पुरूषार्थ पर चौका

आत्महीनता की इस वृत्ति का एक पहलू और है। देश का अंग–भंग हो जाता है, माँ–बहिनों की इज्जत लुटती है। एक दो नहीं, शत–शत आर्य–ललनाओं के नंगे जुलूस निकाले जाते हैं, **'सीता का छिनाला'** जैसी गन्दी पुस्तकें निकलती हैं। 'राम मुर्दाबाद' के नारे लगते हैं। **श्रीराम** के चित्रों को जूते की मालायें पहनाई जाती हैं, **राम**–मूर्तियों पर जूते लगाये जाते हैं, उन्हें तोड़ा जाता है (हा, हन्त! पाप शान्त हो!! पाप शान्त हो!!!) अवतारवादी के पास इस सबके प्रतिकार के लिए एक ही उत्तर है– ''अभी पाप का घड़ा भरा नहीं है, भर जाने पर कल्कि अवतार होगा और तब सबका एक दम सफाया! आपने तब तक क्या करना है? पुरूषार्थवाद पर चौका फेरने वाला उत्तर मिलता है– 'हमारे वश का क्या है? और तभी हमें कवि की ये पक्तियाँ याद आती हैं–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।।

सचमुच आज का आर्य (हिन्दु) नर–पशु बनकर रह गया है। अपमान की जिन भीषण चोटों से मुर्दा से भी मुर्दा एक बार तिलमिलाकर उठ खड़ा हो जाता हम पर उनका कोई प्रभाव नहीं। **'नर हो न निराश करो मन को, कुछ काम करो, कुछ काम करो।'** कवि के ये प्रेरक गीत, भावोद्‌गारों की यह शीतल वारि–धारा अवतारवाद की विस्तृत मरूथली में सूख कर रह गई है।

चरित्रनाशः सर्वनाश

पानी का सहज स्वभाव नीचे की ओर जाने का है। विशेष यान्त्रिक क्रिया से ही उसे ऊँचे चढ़ाया जाता है। यदि वह क्रिया निष्पन्न न हो तो पानी नीचे की ओर बहेगा। मानव जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाने के लिए महापुरूषों के उज्जवल चरित्र यान्त्रिक क्रिया का काम करते हैं। अवतारवाद द्वारा उस प्रक्रिया को नष्ट कर दिये जाने पर इन्द्रियों के इन्द्रजाल से विमोहित मनुष्य का चारित्रिक पतन स्वयं सिद्ध है।

विद्वानों का कथन है कि चरित्रनाश, सर्वनाश है। मनीषियों की दृष्टि में धन—नाश कोई हानि नहीं, स्वास्थ्य—नाश एक बड़ी हानि है और चरित्र—नाश सर्वनाश है। अवतारवाद की अवैदिक मान्यता ने हमें चरित्र—नाश का प्रसाद दिया है। महापुरूषों के जीवन से प्रेरणा लेकर चरित्र निर्माण का मार्ग जब त्याग दिया गया तो चरित्र का पतन तो स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं अवतारवाद की आड़ में चरित्र—नाश के नये नुस्खे भी तैयार हुए। किसी भी महापुरूष में पहले तो कुछ न कुछ मानव—सुलभ दुर्बलतायें होना भी सम्भव है फिर अपने पापों की ओट के लिए अनेकों झूठे अैर पाप पूर्ण प्रसंग इन महापुरूषों के जीवन के साथ जोड़ दिये गये। **श्रीराम** पर तो **'मर्यादा पुरूषोत्तम'** होने से कुछ कृपा की गई, पर **श्रीकृष्ण** के नाम पर 'दान—लीला', 'मानलीला', 'रास—लीला', 'महारास—लीला', 'चीरहरण—लीला', 'कुब्जा—सम्भोग' आदि कितने ही प्रसंगों में पाप—कथायें जोड़कर उच्छृंखल और दुराचारी जीवन के रास्ते खोले गये। **राधा** और **कृष्ण** का नाम लेकर मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना और दूसरे

कथित तीर्थस्थानों पर नारी जाति के पवित्र सतीत्व के साथ खिलवाड़ करने वाले तथा चोरी और ठगी का खुला व्यापार करने वाले इन नर–पिशाचों से कोई पूछे कि यह तुम क्या करते हो तो 'चौरजार शिखामणिः' की उक्ति के साथ उत्तर मिलता है– 'जब भगवान् ही ऐसा करते हैं तो हमारे करने में क्या दोष? हर पाप के समर्थन के लिए के अवतारवादी के पास औट है। **''लगे रगड़ा मिटे झगड़ा''** का घोष करने वाले भंगड़ियों को 'बुद्धि लुम्पति यद! द्रव्य मदकारी तदुच्येत की बात कहकर आप पूछियेकि इस बुद्धिनाशिनी भंग का सेवन आप क्यों करते हैं तो झट शिवजी को लाकर खड़ा कर देंगे। धोखेबाजी, छल–कपट, झूंठ, मक्कारी, वामाचार मांस–मंदिरा सेवन पर स्त्री गमन आदि सभी पापों के समर्थन के लिए 'अवतारवादी तैयार है। **ब्रह्मा, विष्णु, शिव** तथा अन्य अनेक वैदिक महापुरूष अवतारवादियों के हाथों पड़कर कितने बदशक्ल और विद्रूप कर दिये हैं, कोई भी सहृदय व्यक्ति इनकी पहली झाँकी पर ही रो उठेगा। साथ ही जो भारत जगद्गुरू था उसकी इतनी–हीन करूण दया का मूल कारण भी उसकी निगाहों में स्पष्ट हो उठेगा।''

मूर्ति पूजा का अभिशाप

चक्रवर्ती शासक के भाग्य में हजार साल की लम्बी गुलामी और उसके बाद यह कटी–फटी स्वतन्त्रता! अनन्त ऐश्वर्यों के अधिपति का भूखे पेट सोना!! साहस और शौर्य के धनी की यह अर्द्धजीवित दशा– जिस मूर्तिपूजा के परिणाम हैं राष्ट्र–जीवन के उन अनेक दुर्भाग्यों की जननी, अनेक पाखण्डों की पोषक मूर्तिपूजा का अभिशाप भी अवतारवाद की कल्पनाका परिणाम है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महात्मा बुद्ध के पूर्व मूर्तिपूजा का वर्तमान रूप कहीं अस्तित्व में नहीं था। मूर्ति के लिए प्रयुक्त 'बुत' शब्द का ही अपभ्रंश है। **महात्मा बुद्ध** के जीवनकाल मे भी मूर्तियाँ नही थीं। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनीश्वरवादी चेलों में अन्धश्रद्धा की अति बनी और मूर्तिपूजा आरम्भ हुई। आम लोगों को सस्ता नुस्खा चाहिए था, वे बौद्ध मत की ओर झुके। बस, बुद्ध और महावीर की स्पर्धा में ही **रामकृष्णादि** क्षत्रिय वीरों को लाकर खड़ा किया गया। उन्हें ईश्वरावतार घोषित किया गया और अनेक विधि दुःख –दारिद्रय की जननी मूर्तिपूजा को 'सनातन' धर्म' के नाम से हमारे गले मढ़ दिया गया।

ईश्वर पर पक्षपात का दोष

एक दो नहीं चौबीस–चौबीस ईश्वर अवतार हुए किन्तु वे सारे के सारे भारत में ही हुए। तो क्या संसार भर में सबसे अधिक पापी भारत में ही हुए या फिर यह ईश्वर का पक्षपात था? अवतारवादी विचारें और इस अविचार को त्यागें।

नास्तिकता का मूलः' सच्ची ईश्वर भक्ति का उन्मूलन

'नास्तिको वेद निन्दकः' इस आधार पर अवतारवाद की कल्पना वेद के विरूद्ध होने से नास्तिकता को पोषण देती है। इस शास्त्रीय व्यवस्था के अतिरिक्त ईश्वर और धर्म के नाम पर जब अवतारवाद की कल्पना से प्रसूत और स्वार्थ एवं दम्भ से पूर्ण घिनौने चित्र सामने आये, एक–दो नहीं चौबीस ईश्वरावतार (जिनमें कच्छ,मच्छ व वाराह भगवान! भी शामिल है) तैयार किये गये और ये सब मिल कर हमारे सर्वनाश का ही कारण सिद्ध हुए तो अनेकों बुद्धिजीवी जन ईश्वर और धर्म

के ही खिलाफ उठ खड़े हुए। अवतारवाद ने धर्म को रूढ़िगत कर्मकाण्ड बनाकर रख दिया सदाचार की बुहारी दे दी गई। धर्म आचरण ही चीज न रहकर 'सौगन्ध खाने' के काम का रह गया। सब कुछ पापाचार करने पर भी अवतारवाद की ओट में सब कुछ माफ था। ऐसी दशा में बुद्धजीवियों द्वारा धर्म और ईश्वर का विरोध स्वाभाविक था। इस प्रसंग में महाकवि अकबर की निम्न पंक्तियाँ कितनी अर्थपूर्ण हैं–

खुदाके बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनिकर हुई है दुनियाँ।
कि ऐसे बन्दे हों जिस खुदा के वह कोई अच्छा खुदा नहीं है।

अवतारवाद ने ही सदाचारनिष्ठा, कर्त्तव्य–प्रेरक सच्ची ईश्वरभक्ति की जगह मिथ्या नाम–महात्म्य आदि, की कदाचार प्रवर्त्तक मान्यताओं को जन्म दिया, इस तरह एक प्रकार की ढ़की हुई नास्तिकता को अवतारवाद ने उत्पन्न किया जिसकी प्रतिक्रिया आज जाहिर नास्तिकता के रूप में हो रही है।

महापुरूष ईश्वर कैसे

प्रश्न- यह सब तो बड़ा ठीक, युक्ति-युक्त और सर्वथा सत्य है, किन्तु एक प्रश्न है कि जब श्रीराम आदि महापुरूष थे, उनके समकालीन भी उन्हें महामानव ही मानते थे तब वे ईश्वरावतार क्योंकर माने जाने लगे?

उत्तर- बड़ा युक्तियुक्त प्रश्न है। महापुरूषों को ईश्वरावतार कैसे बना दिया जाता है? इस सम्बन्ध में युग पुरूष एवं राष्ट्रपिता बापू का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। अति श्रद्धा धीरे–धीरे अन्धश्रद्धा का रूप ले लेती है और अन्धश्रद्धा से जो भी अनर्थ हो जाय वही थोड़ा है। जैसे 'आज के अति बुद्धिवाद' ने मनुष्य को हृदयहीन, स्पन्दनहीन, जड़वत और यन्त्रवत् बना दिया है। उसी प्रकार अति श्रद्धासे उत्पन्न अन्धश्रद्धा ने भी

हमारे देश में और सर्वत्र ही सर्वनाश के दृश्य उपस्थित किये हैं।

गाँधी जी जब जीवित थे तभी बिहार के बुद्धिविहीन अन्धभक्तों द्वारा उनकी मूर्ति बनबाई गई और टन--टन, पू-पू का दौर शुरू हुआ। पर गांधी जी तब जीवित थे। उन्होंने अपने **पत्र 'हरिजन'** में इन बुद्धि-शत्रु अन्ध चेलों की वह खबर ली कि उनके 'औंधेनगाडे' हो गये। उन्होंने डाँट बताते हुए कहा-भोले भाइयो ! मैं एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ। उससे अधिक कुछ नही। हर कोई मेरे जैसा बन सकता है। मेरे में कोई चमत्कार अथवा ऐसा कुछ नहीं है जो दूसरे मनुष्यों की पहुँच से परे हो। मेरी मूर्ति बनाकर मुझे जिन्दा ही मारने की कोशिश मत करो। यदि तुम्हें मेरी भक्ति ही सवार हुई है तो मेरे १४ सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम का आचरण और प्रचार प्रसार कीजिए। कितना स्पष्ट समाधान है, प्रस्तुत शंका का। वह मन्दिर बन्द कर दिया गया। **गांधी जी** के जीवन से ही अन्धविश्वास के खण्डन का एक और उदाहरण लीजिए-

एक गरीब किसान और उसकी स्त्री **गांधी जी** से मिलने गये। **गांधी जी** २१ दिन के उपवास से काफी कमजोर हो चुके थे। किसान दम्पति ने उनसे मिलने की प्रार्थना की और कहा कि उनका इकलौता लडका बहुत सख्त बीमार है और वे गांधी जी के चरणों का चरणामृत ले जाकर उसे देना चाहते हैं। गांधी जी ने उन्हें अपने पास बुलाया और धीरे से दृढ आवाज में कहा, 'क्या तुम ईश्वर पर विश्वास करते हो?' दोनों ने सिर झुका दिया। गांधी जी बोले, 'ईश्वर में विश्वास रखते हुए तुम क्यों उसका अपमान करते हो? मेरे लिये कितने शर्म की बात है कि अपने पावों की रज का मैला पानी तुम्हारे लड़के के पीने के लिए दूँ। क्या बीमारियाँ मैले पानी से जाती

हैं?" इसी तरह गांधी जी पौन घण्टे तक उन्हें समझाते रहे। दोनों ने लज्जा से सिर झुका लिया।

गांधी जी के अन्तिम शब्द थे– "ईश्वर में विश्वास रखो और अपने लड़के का इलाज कराओ।" आज गांधी जी को ईश्वर बनाने की सिरतोड़ कोशिश की जा रही है और करीब–२ आधा ईश्वर तो उन्हें बना ही दिया गया है। दिल्ली में राजघाट पर जाकर कोई भी देख सकता है कि आज गांधी जी की 'कब्र–पूजा' शुरू हो गई है। गांधी जी के चरित्र की पूजा का स्थान उनकी चित्र-पूजा लेती जा रही है। और फूलों के ढेरों के नीचे दबी गांधी की आत्मा जैसे कराह रही है। एक सहृदय कवि से जब यह नहीं देखा गया तो उसका स्वर फूट निकला–

मानव केवल मानव गांधी!

जय मानव जय मानव गांधी!

कहना है गांधी को ईश्वर, करना है गांधी को पत्थर!
देखो जिसकी आत्म-शक्ति से कांप उठी बर्बरता थर-थर।
वह मनुष्य कुल का सपूत था, मानव केवल मानव गाधी ।।

–कहाँ है आज गांधी जी का आदर्श! गांधी जी की प्यारी गाय आज और अधिक कटती है, यान्त्रिक जीवन, शहरी सभ्यता, अंगरेजियत और विदेशीपन का बोलबाला है। इस प्रकार गांधी जी के आदर्शों की लाश पर आज गांधी जी को ईश्वर बनाने और केवल पूजा की वस्तु बनाने की कोशिश की जा रही है। यदि यही क्रम रहा तो कुछ समय में गान्धी जी का जन–जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। एक ईश्वर आया था, उसने अपने चमत्कार से अग्रेजों को भगा दिया... यही कहानी शेष रह जायेगी। पर ऐसा करके क्या हम उस गांधी जी के साथ न्याय करेंगे जिसने कितने तप और साधना

के बाद अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाई और जिसने आत्मविजय द्वारा विश्व–विजय के सपने को साकार करके संसार के हर इन्सान को प्रेरणा दी कि दुनियाँ का दुर्बल से दुर्बल इन्सान भी आत्म–विजय द्वारा लोक विजय कर सकता है? हृदय पर हाथ रख कर जरा तो सोचिये कि महामानव गांधी की यह कब्र–पूजा क्या गांधी जी के साथ घोर अन्याय तथा आज के इस विज्ञान के युग में एक महामूर्खतापूर्ण नाटक मात्र ही नहीं है?

हम गोडशे को गान्धी का हत्यारा कहते हैं ठीक है। पर याद रखिये गोडशे ने गांधी का शरीर मात्र हमसे छीना था। (यदि ऐसा कहा जा सकता है तो) पर गांधी की कब्र–पूजा करने वाले गांधी के सिद्धान्तों की, गांधी के आदर्शों की हत्या के रूप में गांधी की आत्म–हत्या का पाप कर रहे हैं।

चरित्र की नहीं चित्र की पूजा

अवतारवाद के इस पाप ने हमारे रक्त को ही विषाक्त कर दिया है सबसे बड़ी खराबी तो यह है कि न किसी के जीवन–काल में और न उसके बाद ही उसके आदर्शों व उसूलों पर आचरण किया जाता है, पर मरने के बाद उसकी मिट्टी को, उसके चित्र की और उसकी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है। उसकी राह पर चलने का कोई नाम नहीं लेता।

नेहरू जी की मृत्यु के बाद क्या हुआ उनकी भस्म के साथ भी गांधी जी की भस्म के समान अत्याचार किया गया, उसे हम नेहरू जी की मिट्टी ख्वार करना ही कहेंगे।

हम याद रखें कि यह सम्मान–प्रदर्शन नहीं, घोरतम पाप है। आपकी दृष्टि में यदि गाधी जी तथा नेहरू जी वीर थे तो आप बेशक उनकी वीर पूजा कीजिए। मिट्टी पूजाना नाम वीर पूजा नहीं है। वीरों का गुणगान और अनुकरण ही

वास्तविक पूजा नहीं है। वीरों का गुणगान और अनुकरण ही वास्तविक वीर पूजा है। महापुरूषों के चित्रों की नहीं, चरित्रों की पूजा उनके प्रति सबसे बड़ा सम्मान भाव है। आशा है उक्त विवेचन से प्रस्तुत शंका के सम्बन्ध में कि महापुरूष ईश्वर कैसे बन जाते हैं, उचित समाधान मिलेगा।

निष्कर्ष- सच्चाई यह है कि न केवल भारत में किन्तु संसार के हर देश में और हर काल में युग–पुरूष, लोकनायक महापुरूष जन्म लेते हैं और लेते रहेंगे। वे औरों के सुख में अपना सुख तथा औरों के दुख में अपना दुःख मानते हैं। राम–कृष्ण की भाँति ही बुद्ध, महावीर, शिवा, प्रताप, कबीर, नानक, दयानन्द, गांधी ~~(यही नहीं मुहम्मद और ईसा भी)~~ अपने–२ युग के महापुरूष हुए हैं। अपने तप–त्याग और उच्च आदर्शों से ये ईश्वरीय गुणों को धारण कर जन–जन की श्रद्धा के पात्र बन जाते हैं। कालान्तर में यह श्रद्धा अतिश्रद्धा में और फिर अन्धश्रद्धा में बदल कर अवतार, पैगम्बर ईश्वर का इकलौता पुत्र आदि मूढ़ और नाशकारी कल्पनाओं को जन्म दे डालती है। आर्यसमाज इसी सर्वनाश से विश्व मानव को बचाता है।

मेहर बाबा, ब्रह्माकुमारी, हंसामत सतसाँई बाबा आनन्दमार्गी आदि इस समय अठारह फिरी हुई खोपड़ियाँ है जो अपने को परमेश्वर का अवतार कहकर न केवल अपने आपको पुजवा रहे हैं, अनेक अनर्थ भी करा रहे हैं और धर्म तथा ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को लोगों की निगाह से ओझल कर अधर्म को धर्म और अनीश्वर को ईश्वर बता रहे हैं। इस्लाम भी है जो एक ईश्वर की उपासना का दावा करके ताजियों व कब्रों की पूजा करा रहा है। ईसाईयत में भी पिता के स्थान में पुत्र की उपासना है। सिख पन्थ हे जिसमें भगवान्

की वाह–वाह के बजाय गुरूओं की वाह–वाह है। तुर्रा यह है कि कही भी चरित्र की प्रतिष्ठा नहीं है। सर्वत्र **'हिरण्मयेन पात्रणे सत्यास्यापिहितं मुखम्'** दौलत के ढक्कन से सत्य का मुंह ढक रहा है'' इसलिए तो आज के कवि को लिखना पड़ा–

जी चाहता है धर्म के, महलों को फोड़ दूँ।
ईश्वर के नाम पर बने, भवनों को तोड़ दूँ।।

ईश्वर हमें अपेक्षित आत्म–बल दें कि हम अवतारवाद के मोहक शिकंजे से स्वयं बचकर अपने देश बन्धुओं को उससे बचायें।

■

पौराणिक बन्धुंओं से

प्यारे भाई, हम आपको कैसे हृदय चीरकर दिखलायें कि आर्य समाज आपका सबसे बड़ा हितैषी और सच्चा मित्र है। किसी कवि का कथन है– 'सबसे कठिन है अपने को पहिचानना।' जहाँ आत्म स्वरूप को पहिचानना, अपनी ही कमजोरी को देख पाना कठिन है, वहाँ कौन वास्तव में अपना है और कौन पराया, यह जानना भी सरल नहीं है। चंचल चित्त विद्यार्थी सिनेमा और सिगरेट का शौक पैदा करने वाले लड़कों को अपना मित्र समझते हैं और माता–पिता तथा दूसरे सुहृदों को जो उनको इस कुपथ से रोकते हैं, उन्हे अपना शत्रु! समझ समय आने पर उन्हें पश्चात्ताप होता है वे रोते हैं। पर इससे पहले वे अपने स्वास्थ्य, सदाचार, धन आदि बहुत कुछ को स्वाहा कर चुके होते हैं। प्यारे बन्धु, आर्यसमाज जब धर्म के नाम पर जीवन नाशक

मान्यताओं से आपको रोकता है तो आप उसे शत्रु मान बैठते हैं। और जो स्वार्थ–वंश आपको सत्य से दूर रखते है उन्हें अपना मित्र मानते हैं। पर क्या यह बाल–बुद्धि नहीं है? आर्यसमाज ने कितने ही बन्धुओं को जब बचा लिया।' जब उन्हें समझ आती हैं यह कहते सुना है– आर्यसमाज ने मुझे बचा लिया तब वे कृतज्ञता से आंसू बहाते हैं, यह उनके पश्चात्ताप के आंसू होते हैं।

हमारे स्नेही बन्धु, आप ईमानदारी से और गहराई से सोचिए कि क्या राम को ईश्वरावतार बनाकर हम उनके अस्तित्व और गौरव को मिटाने का पाप ही नहीं करते? और क्या प्यारे राम को मिटाने का दुष्परिणाम एक भीषण राष्ट्र–द्रोह ही नहीं है? यदि हाँ, तो इस राष्ट्र–द्रोह से बचिये। आज से मत कहिये कि राम ईश्वर थे, और हनुमान बन्दर और जटायु गिद्ध था।, मत कहिए कि अहिल्या पत्थर थी। सोचिए कि कोरे नाम के जप से क्या पाप माफ हो जाते हैं,? शुभाचरण कीजिए और विश्वास कीजिऐ कि हम भी **श्रीराम** जैसे यशस्वी और गौरवमय बन सकते हैं। ऐसा कहने और मानने में ही श्रीराम का गौरव है।

बन्धु आप सच बताइये, ईमानदारी से– कि गोवर्धन का मुड़िया पूनों का मेला, वृन्दावन का रथ का मेला और बरसाने की होली का हुरदंगा! क्या इन्हें धार्मिक आयोजन कहा जा सकता है? क्या रामलीला आंख सेकने और सस्ते मनोरंजन का धन्धा मात्र नहीं है। क्या राम की बरात! आदि को धार्मिक आयोजन कहा जा सकता है? क्या इसका चरित्र– निमार्ण से दूर का भी सम्बन्ध है, उल्टे क्या ये चरित्र–नाशक नहीं है? तब क्या यह राष्ट्र–द्रोह नहीं है? और मेरे महान् राम का आज जो दुष्टों को अपमान करने का दुस्साहस हुआ है वह क्या हमारे इसी राष्ट्र–द्रोह का परिणाम नहीं हैं? तब क्या था इस अमूल्य

मानव–जीवन को इन विनाशकारी मान्यताओं की भेंट चढ़ाकर आप अचिन्तनीय घाटे का सौदा ही नहीं कर रहे हैं?

एक बात और। एक दुकानदार असली घी की जगह नकली घी ग्राहक को देता है। यह पाप है, घोर पाप है! पर उस घी को सेवन करने वालों का सिर्फ शरीर रोगी होता है। किन्तु धर्म के नाम पर विकृत पदार्थ देने से तो राष्ट्र की अनेकों पीढ़ियाँ जीवन शून्य, आत्म गौरव हीन और परास्त हो जाती हैं। बन्धु, इस भयंकर पाप की कल्पना करके ही ऋषि दयानन्द अपने आत्मीयजनों को इस पाप–पंक से निकालना चाहते थे।

बन्धु आप हमारी भावनाओं को समझिये। आचार्य देव दयानन्द के हृदय की अन्तर्ज्वाला की टीस को पहिचानिये। भरे पूरे परिवार को ठोकर लगाकर, प्रदीप्त यौवन के आह्वान से मुख फेर कर ब्रह्मानन्द जैसे अवर्ण्य समाधी–सुख को त्यागकर, तिल–तिल जलने वाले उस विषपायी देवता को आत्मपुकार की गहराई से जानिये। यदि आप में कुछ भी मानवता है, आपका रोम--रोम पुलकित हो उठेगा, आप निहाल हो जायेगें और हमारे स्वर के साथ स्वर मिलाकर कहेंगे जगद्‌गुरू ऋषि दयानन्द की जय! राष्ट्र–पुरूष श्रीराम की जय! महाभारत के निर्माता योगेश्वर कृष्ण की जय!! जगतज्जननी भारत माता की जय! वैदिक धर्म की जय! गौ माता की जय! मानवता अमर रहे। संसार के श्रेष्ठ पुरूषों एक हो!!